DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

लोकदेवत्व

लोकदेवी लक्ष्मी

आदि से आज तक लोकमन जिस सुख-समृद्धि के लिए निरंतर दौड़ता रहा है, उसकी अधिष्ठात्री लोकदेवी लक्ष्मी रही हैं । लोकदेवी लोक द्वारा स्वीकृत और पूजित होती हैं, क्योंकि वह किसी भी तरह के भेद-भाव और मतवाद से परे होकर सबका या पूरे लोक का हित करती हैं । देवी लक्ष्मी की भी यह विशेषता रही है, इसलिए वे जहाँ बहुत प्राचीन काल में लोकपूजित रही हैं, वहाँ आज के इस बौद्धिक युग में भी लोकधर्म में मान्य लोकस्वीकृत देवी हैं । असल में लोक उसी को लोकदेवी बनाता है, जो लोकजीवन से जुड़कर लोकभावना के साथ रमती है और उसे मनवांछित फल देती है । यह सुफल भले ही श्रम का उत्पादित फल हो, पर लोकभाव उसे लोकदेवी का ही मानकर अपनी वैयक्तिक भूमि से परे हो जाने में संतुष्ट रहता है, ताकि वह अपनी वैयक्तिक सुख-दुःख-परक अनुभूतियों को उसी के जिम्मे रखकर अपने को संतोष दे सके । लोक का यही मनोविज्ञान लोकदेवी या लोक देवता बनाता है । लोकदेवता लोकमानस की किसी-न-किसी भावना का ही प्रतीक है और यह प्रतीक कालचेतना के अनुसार व्यापक एवं संकुचित होता रहता है । कभी-कभी किसी से हट जाता है और किसी-किसी से जुड़ जाता है । मतलब यह कि हर लोकदेवता या लोकदेवी का अपना अलग इतिहास है ।

देवी, भवानी या शक्ति की पूजा सबसे पुरानी है । मातृयुग में जब माता ही परिवार की मुखिया या समाज में सर्वाधिक प्रभावशालिनी थी, तभी से मातृपूजन की कल्पना उत्पन्न हुई और धीरे-धीरे देवी या मातृका का रूप उभरकर लोक में व्याप्त हुआ । सिन्धुघाटी में कई मातृ-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनसे प्रकट है कि मातृका-पूजन तत्कालीन धर्म का विशेष अंग था । डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि सिन्धुघाटी की मातृका-पूजन की परम्परा ही भारत-भर में शक्ति, देवी और माताभूमि के रूप में स्वीकृत हुई, लेकिन यह भूलना ठीक नहीं है कि नर्मदा घाटी की लोकसंस्कृति सिन्धुघाटी की लोकसंस्कृति से भी प्राचीन है । वहाँ कोई मातृ-मूर्ति उपलब्ध होने की जानकारी मुझे प्राप्त नहीं है, फिर भी यह निश्चित है कि मातृका-पूजन वहाँ प्रचलित था । विंध्याटवी के पुराने निवासी शबर और पुलिंद देवीभक्त थे । महाकवि बाणभट्ट ने उन्हें भगवती चण्डिका का भक्त कहा है और अटवी के चण्डिका देवी के मंदिर का वर्णन भी किया है ।-२ यही शबर, पुलिंद आदि बुंदेलखण्ड की प्राचीन जातियाँ थीं, अतएव इस जनपद में सबसे पहले मातृका-भक्ति ही विद्यमान थी और वह निरन्तर बनी रही । आज भी बुंदेलखंड के हर गाँव में हर दिशा की ओर भियाँरानी या भुइयाँरानी की स्थापना है । ये भियाँ या भुइयाँ देवी ही भूमिदेवी या भूदेवी हैं, जो ग्रामदेवी के रूप में पूजी जाती हैं । एक चबूतरे पर एक छोटी मढ़िया, कच्ची या पक्की, बिना किसी विशिष्ट मूर्ति के गाँव की भुइयाँ या भियाँ देवी हैं, बिल्कुल ऋग्वैदिक श्रीदेवी की तरह ।

ऋग्वैदिक काल में श्रीदेवी सौन्दर्य, समृद्धि, ऐश्वर्य और सौभाग्य की प्रतीक लोकदेवी थीं, जिनके सन्दर्भ में श्रीसूक्त की रचना हुई थी । कुछ विद्वानों के अनुसार श्रीसूक्त की रचना लोकगीत के रूप में हुई है और वह तत्कालीन लोकसाहित्य का अंग था, इससे भी वे लोकदेवी सिद्ध होती हैं । इस सूक्त में श्रीदेवी कमलासना, कमलवर्णा और कमलमालिनी हैं । वे धन-धान्य के साथ प्रकाश और कीर्ति प्रदान करती हैं । वस्तुतः वे भूदेवी या भूलक्ष्मी हैं और पृथ्वी की समस्त गुण-गरिमा धारण किये हुए राष्ट्र (आर्यावर्त) की आराध्या रही हैं । सूक्त से यह भी स्पाष्ट है कि लोकदेवी श्री या लक्ष्मी के इस रूप का सम्बन्ध नारायण या विष्णु से नहीं था और वे पुरुष पर निर्भर न होकर पूर्ण स्वतंत्र थीं । इस स्वरूप की पूजा मानवीय और प्रतीक रूप में-दोनों तरह से होती थी । दरअसल वे आर्य-संस्कृति से भिन्न विन्ध्याटवी में

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

रहने वाली जातियों की शक्ति या मातृका के समान ही थीं । अन्तर केवल इतना है कि मध्यप्रदेश के आर्यावर्त या अंतर्वेद के भू-भाग में मातृका को कुछ दूसरे गुणों और प्रतीकों से जोड़कर श्री या लक्ष्मी देवी की संरचना कर ली गई थी । उन्हें सूर्या, चन्द्रा और हेममालिनी भी कहा गया और उनका सम्बन्ध हाथी, गौ, अश्व आदि से भी जोड़ा गया । लोकचित्रों में भी लक्ष्मी के दोनों ओर सिरों पर सूर्य-चन्द्र लिखे जाते हैं, जो इसी का प्रभाव है । हाथी और अन्य पशुओं का अंकन भी इसलिए होता है कि श्री या मातृका सभी की जनित्री हैं ।

श्रीदेवी की अवधारणा का विकास आज की लोकदेवी लक्ष्मी हैं । श्री का विग्रह बहुत कुछ विकसनशील रहा है, पर उसका प्रतीक श्रीचक्र या श्रीयन्त्र बराबर प्रचलित रहा । विभिन्न भू-भागों से जो श्रीचक्र या मंडलाकार चकियाँ मिली हैं, उनकी चर्चा कुछ पुरातत्त्ववेत्ताओं ने की है और इन्हें ईसापूर्व चार सौ वर्ष तक का माना है । स्पष्ट है कि श्रीदेवी लोकदेवी के रूप में दीर्घकाल तक रही हैं । दूसरे, वे कहीं पहले दो अलग-अलग रूपों श्री और लक्ष्मी में जानी गईं और बाद में दोनों मिलकर श्रीलक्ष्मी बन गईं । उनके एक होने का कारण उन दोनों को विष्णु की पत्नी के रूप में स्वीकारना है, जैसा कि यजुर्वेद में कहा गया है (श्रीश्चते लक्ष्मीश्चते पत्न्यौ, ३१/२२) । लोक ने दो के स्थान पर एक को चुना और लक्ष्मी का रूप ही अधिक मान्य हुआ, इस तरह लक्ष्मी में ही श्री के सभी गुण और प्रतीक समाहित हो गये ।

श्रीदेवी भूदेवी के रूप में पृथ्वी की समस्त सम्पत्ति और समृद्धि से जुड़ी थीं । उनके सूर्या-चन्द्रा होने से जिस प्रकाश की उपलब्धि हुई, उससे अँधेरे में छिपी समृद्धि उजागर हो गई । दूसरे, पृथ्वी स्वयं धन-धान्य, पशु आदि की जननी है और मानव भी पृथ्वी-पुत्र है । लेकिन दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व जल है, जिसमें रत्नाकर छिपे हैं और जिसकी खोज संस्कृति के एक विकास-चरण में जरूरी समझी गई । फलस्वरूप सागर-मंथन से 'लक्ष्मी' निकली, जो पहले स्वयं चौदह बहमूल्य रत्नों में से एक थीं, पर बाद में समस्त समृद्धि की प्रतीक बन गाईं । सागार-मंथन की यह कथा और लक्ष्मी की उससे संबद्धता निश्चित ही भूदेवी की प्रतिष्ठा के बाद की है । यही कारण है कि बुंदेलखंड के शबरों, पुलिंदों आदि में मातृका के रूप में भूदेवी ही स्वीकृत रहीं, लक्ष्मी की पहुँच बहुत बाद में हुई ।

लक्ष्मी (जल) और श्री (पृथ्वी) के एक होने पर श्रीलक्ष्मी इतनी प्रभावशाली लोकदेवी के रूप में उभरीं कि जैन और बौद्ध-धर्म को भी उन्हें मान्यता देनी पड़ी । जिस प्रकार लोक में देवी की पूजा बने रहने के दबाव के कारण आर्यावर्त या अंतर्वेदी भू-भाग के लोगों को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के बावजूद श्री या भूदेवी की प्रतिष्ठा करनी पड़ी, उसी प्रकार लक्ष्मी लोकदेवी के व्यापक प्रचलन के कारण अन्य धर्मों को भी उन्हें स्वीकारना पड़ा । यह बात अलग है कि उन्होंने उन्हें पार्श्वदेवी के रूप में ही ग्रहण किया ।

समुद्र-मंथन का रूपक इतना चमत्कारी था कि उसने लक्ष्मी के लिए लोक में एक लहर पैदा कर दी, क्योंकि लोकदेवता बनने का एक प्रमुख हथियार चमत्कार है । एक बात और है, खेतिहर वर्ग के बहुसंख्यक होने के कारण लक्ष्मी को करीषिणी अर्थात् गोबर से उत्पन्न होने वाली या गोबर में सने पैर वाली कहा गया, जिसके कारण वह पशुधन से संबद्ध हो गईं और इस वर्ग की भी चहेती देवी हो गईं । इस तरह लोकधर्म में लक्ष्मी का प्रमुख स्थान बन गया ।

लोकधर्म हमेशा युग-चेतना से प्रेरित होकर विकास करता रहा है । मौर्यकाल में दो ऐतिहासिक घटनाएँ लोक को प्रभावित करने में प्रधान रहीं-एक तो विदेशी आक्रमणकारी सिकंदर की पराजय और दूसरी चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा पूरे देश को एक ध्वज के नीचे लाने से एकसूत्रता की भावना का प्रसार । इसी पृष्ठभूमि में अशोक ने बौद्ध-धर्म अपनाकर उसे लोक तक पहुँचाने का अथक प्रयास किया और लोक ने उसे ग्रहण भी किया, लेकिन उत्तर से आयी यक्षों की लोकधर्मी परम्परा ने लोक को अधिक आकर्षित किया । हालाँकि बौद्ध-धर्म में लोकतत्त्व अधिक मात्रा में थे, पर यक्ष-परम्परा में चमत्कारी प्रवृत्ति अधिक थी, इस कारण उसका प्रभाव अधिक हुआ । दूसरे, वह प्राचीनकाल से निरंतर प्रवहमान थी और रामायण काल में अमरत्व तथा महाभारत काल में अमृतत्त्व, धनाधिपत्व एवं लोकपालत्व की पर्याय होकर व्यापक रूप ले चुकी थी । बुंदेलखंड में उस समय नागों और वाकाटकों का आधिपत्य था और वे दोनों हिन्दू संस्कृति के प्रबल पक्षधर थे । प्रसिद्ध इतिहासकार काशीप्रसाद जायसवाल ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'आधुनिक हिंदुत्व की नींव नाग सम्राटों ने

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

रखी थी, वाकाटकों ने उस परइ मारत खड़ी की थी, और गुप्तों ने उसका विस्तार किया था ।'-३ इस दृष्टि से यह स्वाभाविक ही था कि नाग-काल में यक्ष-पूजा का सनातनी रूप भी लोकधर्म में सम्मिलित होता । फल यह हुआ कि लोकधर्म में बौद्धों और यक्षो के लोकधर्मी तत्त्व समाविष्ट हो गए । पूरे बुंदेलखंड में यक्षों के चबूतरे 'ठाकुर के चौंतरा' नाम से बन गए और लोकदेवी लक्ष्मी का प्रभाव कुछ क्षीण हो गया ।

धर्म जोड़ने वाला माध्यम है, फिर लोकधर्म में तो विशिष्ट धर्म की सम्प्रदायगत निजता विगलित हो जाती है, अतएव बौद्ध, यक्षी और शैव विग्रहों के साथ-साथ लक्ष्मी भी प्रतिष्ठित हुईं । शुंगों की भागवती-दृष्टि से उन्हें कुछ संरक्षण मिला, जिसका प्रमाण भरहुत और साँची की शुंग-कला में मिलता है । भरहुत के स्तूप में यक्ष, नाग और बुद्ध की पूजा के चिह्नों के साथ सिरिमा (श्रीमाँ या लक्ष्मी) अंकित की गयी हैं । विशेषता यह है कि लक्ष्मी का विकसित विग्रह प्रकट हुआ, जिसमें कमल के फुल्लों पर खड़ी हुई या कमल-वन में बैठी हुई एक सुन्दर स्त्री को ऊपर से दोनों ओर स्थित दो हाथी आवर्जित घटों से स्नान करा रहे हैं । गजलक्ष्मी का यह अभिप्राय साँची के स्तूप संख्या दो में उत्कीर्ण है । साथ ही कमल पर खड़ी और एक हाथ में कमल लिए लक्ष्मी, जिनके दोनों ओर दो सेवक छत्र और चँवर लिये हैं, का अंकन भी है । गजलक्ष्मी की मूर्ति उड़ीसा कीर खण्डगिरि की पहाड़ी पर अनन्त गुम्फा में भी मिली है । डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि गजलक्ष्मी की यह मूर्ति लगभग सारे भारत में सब धर्मों को मान्य थी । इसका अर्थ यह है कि लोकदेवी लक्ष्मी का स्वरूप गजलक्ष्मी के रूप में स्थिर हो चुका था । बुंदेली लोक में भी वह प्रचलित रहा, क्योंकि पुराने ग्रन्थों और लक्ष्मी जू के पटों में गजलक्ष्मी का चित्रांकन या आलेखन हुआ है ।

पुराणों में गजलक्ष्मी का रूप पूर्णतया स्थिर हो गया था । 'लक्ष्मीतंत्र' में अभिशाप के प्रभाव से लक्ष्मी को हथिनी बन जाना बताया गया है, जो मुझे कपोलकल्पित मालूम पड़ता है । तथ्य यह है कि गज या दिग्गज लक्ष्मी (जल तत्त्व) के लिए पर्जन्य (बादल) के प्रतीक हैं अथवा दिशा-रूपी हाथी जल चढ़ाते लोकदेवी की कीर्ति को और बढ़ाते अंकित किए गए हैं । इसी समय गुप्तकाल में गुप्त-सम्राटों द्वारा वैष्णव धर्म को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया और विष्णु को प्रधानता मिली, जिससे लक्ष्मी भी पूज्य बनीं । गुप्त सिक्कों के पृष्ठ भाग पर लक्ष्मी के दो रूप प्रमुख हुए-एक सिंहासनासीन और कमलपाद्पीठ वाली तथा दूसरा ढीले वस्त्र धारण किये, हाथ में धान्य-पुष्प शोभित मूर्ति का । पहला राज्यश्री और दूसरा सम्पत्ति की समृद्धि का प्रतीक है । दोनों से स्पष्ट है कि लोकदेवी लक्ष्मी को गुप्त महाराजाओं ने राज्यलक्ष्मी के पद पर आसीन किया और एक तरह से वे राष्ट्रिय देवी के रूप में प्रतिष्ठित हुईं । दूसरी तरफ गुप्त राजाओं को विष्णु का ही रूप समझा जाने लगा था, जिसके कारण रानियों को भी लक्ष्मी से उपमित करने की परम्परा चल पड़ी । बाणभट्ट और भवभूति ने रानी को लक्ष्मी कहा है । उससे 'गेहे लक्ष्मी' या गृहलक्ष्मी का प्रत्यय भी उभरा । बुंदेलखंड में आज भी बहू के घर में आने को लक्ष्मी का आगमन माना जाता है ।

बुंदेलखंड में लक्ष्मी की लोकमान्यता कब से हुई, यह खोज का विषय है । यह स्पष्ट किया जा चुका है कि यह प्रदेश आटविक काल से ही शक्ति या देवी-पूजक रहा है और आज तक यहाँ मातृका-पूजन की परम्परा चली आ रही है । मैंने अपने कुलदेव की पूजा में फरका या पट देखा, तो उसमें हल्दी से सप्त मातृकाएँ लिखी हुई थीं और नीचे सात पहिए वाला रथ वाहन के रूप में अंकित था । मातृका-पूजन कई परिवारों में प्रचलित है । इससे पता चलता है कि इस प्रदेश में देवी-पूजा की तीन धाराएँ प्रवाहित रहीं । एक, सबसे पुरानी मातृका-पूजन की, दूसरी, भियाँ या भुइयाँ रानी की, जो भूदेवी या श्रीदेवी की परम्परा में आती हैं और आज भी लोकप्रचलित हैं तथा तीसरी, पार्वती, दुर्गा, लक्ष्मी आदि देवियों के विग्रहों की । जहाँ तक लक्ष्मी-पूजन का प्रश्न है, शुंगकालीन (१८५ ई. पू. से ७२ ई. पू. तक) भरहुत और साँची के स्तूपों में श्रीलक्ष्मी की मूर्तियों का अंकन अभी तक उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर सबसे पुराना ठहरता है, क्योंकि एरण, पवाँया और देवगढ़ के विष्णुमन्दिर गुप्तकाल में निर्मित हुए थे । इस कालावधि में लक्ष्मी का प्रचलन अवश्य था, पर यक्षों और शैवों से प्रेरित और प्रभावित लोकधर्म ही प्रधान था । गुप्तों के समय लक्ष्मी की मान्यता बुंदेलखंड में फैली और इस तथ्य सेइ न्कार नहीं किया जा सकता कि बुंदेलखंड के कुछ भागों में विष्णु और लक्ष्मी के उपासक मौजूद थे, लेकिन लक्ष्मी के राजसी होने के कारण लोक में उनकी व्याप्ति कठिन थी ।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

लक्ष्मी राज्य और सम्पत्ति के प्रतीकात्मक रूप में बहुचर्चित होती गईं । हर्षवर्द्धनकाल में रचित बाणभट्ट के 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' में राजलक्ष्मी का उल्लेख कई बार आया है । इस युग के साहित्य और लेखों में यह कल्पना प्रमुख थी कि राजलक्ष्मी साक्षात् राजा का वरण करती है । इस तरह लक्ष्मी का अर्थ बहुत कुछ भौतिकता का पर्याय हो गया । 'कादम्बरी' में उसे धन के रूप में ही व्याख्यायित किया गया है । शुकनास द्वारा चन्द्रापीड़ को दिए गए उपदेश में लक्ष्मी का वर्णन बिल्कुल आधुनिक लगता है ।-४ उसमें अतिशयता हो सकती है, पर इतना निश्चित है कि लक्ष्मी को धन या सम्पत्ति के रूप में लिया जाता था । 'कादम्बरी' में धन या संपत्ति के लिए लक्ष्मी का प्रयोग है (निजलक्ष्मीकृतकमलोपकारम्) । दूसरी तरफ हर्ष काल में पांचरात्रिक और भागवत संप्रदायों के सक्रिय होने का प्रमाण मिलता है, जिससे लक्ष्मी वैष्णव रूप के प्रसार का अनुमान लग जाता है ।-५ 'कादम्बरी' में लक्ष्मी मृण्मूर्ति (मिट्टी की पुतली) का उल्लेख भी है । स्पष्ट है कि लक्ष्मी लोकप्रिय होने लगी थीं ।

प्रत्येक देवी-देवता एक खास उद्देश्य की पूर्ति के लिए होता है, तभी लोक उसे अपनाता है । लक्ष्मी से कई वर्गा के अनेक उद्देश्य सधते थे-राजाओं के लिए राजलक्ष्मी, वैष्णव हिन्दुओं के लिए देवी लक्ष्मी, परिवार के और उसके मुखिया के लिए गृहलक्ष्मी, और सभी के लिए धनलक्ष्मी । देवता की पूजा में नारियों का हिस्सा ज्यादा होता है, इसलिए उनके लिए सुहाग या सौभाग्य लक्ष्मी । यही सबसे महत् कारण था कि लक्ष्मी लोकदेवी हो गईं ।

परिस्थितियाँ भी अनुकूल साबित हुईं । कुमारिल भट्ट और आचार्य शंकर की लहर ने पूरे देश को जगा दिया और राजपूत राजाओं वीरता से जगह-जगह राज्य कायम कर लिए । बुंदेलखंड में भी राजलक्ष्मी के लिए होड़ लगी रही, पर अन्त में उसे चन्देलों ने वरण किया । चंदेलनरेश हर्ष और यशोवर्मन् के समय (९१५ से ९५० ई.) विष्णु-पूजा और लक्ष्मी की प्रधानता के अनेक प्रमाण मिलते हैं । खजुराहो का लक्ष्मण-मंदिर वस्तुतः विष्णु-मंदिर है और उसके उपासना-गृह के द्वार के ऊपर सरदल पर लक्ष्मी की मूर्ति के दोनों तरफ ब्रह्मा और शिव उत्कीर्ण है,-६ जिससे सिद्ध है कि लक्ष्मी महत्त्व इतना अधिक था कि उन्हें त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) में विष्णु का स्थान दिया गया । चन्देल सिक्कों और मुद्राओं पर लक्ष्मी अंकित की गईं, जो अकेली मूर्ति के रूप में विश्वपद्म या चार पैर वाली पीठिका पर ललितासन लगाये बैठी हैं और उनके दोनों तरफ एक-एक दिग्गज जलकलश से उनके सिर पर जल उँड़ेलते हुए अंकित हैं तथा वे चारभुजी हैं । इस आधार पर उन्हें गजलक्ष्मी या महालक्ष्मी कहा जा सकता है, लेकिन विष्णु के साथ अंकित लक्ष्मी दोभुजी हैं । लोक ने उन्हें अधिकतर दोभुजी में स्वीकृत किया है । वत्सराजकृत 'षटरूपकम्' में समुद्र-मंथन की कथा से प्रेरित 'समुद्रमंथनभिधान' समविकार संकलित है, जिसमें लक्ष्मी और विष्णु के दाम्पत्य सम्बन्ध की ओर संकेत है तथा धर्म-कर्म में लीन और आहार-विहार-विरत होने से ही लक्ष्मी की फल-प्राप्ति का उपाय बताया गया है ।-७

इन उदाहरणों के अतिरिक्त कालिंजर के एक अभिलेख से यह भी स्पष्ट है कि मंदिरों, उद्यानों एवं सरोवरों के साथ प्रासादों या घरों में भी शिव, कमला (लक्ष्मी) और काली की मूर्तियाँ स्थापित होती थीं ।-८ दूसरे, प्रसिद्ध इतिहासकार अल्बेरूनी ने इस युग में जिन प्रमुख लोकोत्सवों का उल्लेख किया है, उनमें दीपावली का उत्सव भी है (सचाउ, भाग १, पृष्ठ १७६), जिससे प्रकट है कि दीपावली के साथ लक्ष्मी-पूजा भी इसी समय जुड़ी । वैसे इस त्यौहार के मनाने का विधान चौथी शती में संकलित पद्म पुराण और सातवीं शती में संकलित स्कंद पुराण में मिलता है,-९ जिसके अनुसार संध्या को लक्ष्मी-पूजन घर-बार, मठ, मंदिर, घाट, चौराहे, राजभवन आदि की पुष्पमालाओं, ध्वजों और दियों से सज्जा तथा अलक्ष्मी को घर से बहिष्कृत करने के लिये रात को स्त्रियों का सूप और डुग्गी बजाते हुए राजमार्ग पर घूमना प्रमुख है । अल्बेरूनी ने ग्यारहवीं शती की दीपावली का वर्णन करते हुए लिखा है-'कार्तिक के प्रारंभ में दीवाली का त्यौहार मनाया जाता है । प्रातः स्नानादि के बाद लोग सज-धजकर पान-सुपारी का उपहार देते-लेते हैं, मंदिरों में जाते हैं और क्रीड़ा-कौतुक कर आनन्द मनाते हैं । रात्रि में नगर दियों से सजाया जाता है । लोगों का विश्वास है कि

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

उक्त अवसर पर बलि राजा का शासन प्रचलित होता है ।' इन सभी प्रमाणों के आधार पर यह सत्य है कि बुंदेलखंड में लक्ष्मी लोकदेवी की तरह लोकमान्य थीं और यहाँ लोक में उनकी प्रतिष्ठा १०वीं शती से शुरू हुई ।

लक्ष्मी और महालक्ष्मी में अन्तर है । देवी माहात्म्य में महालक्ष्मी के विराट् रूप की कल्पना की गई है, जिसके अनुसार शिव से प्रादुर्भूत, ब्रह्मा-विष्णु की इच्छा पर तेज-पुरुष से नारी रूप धारण करने वाली लक्ष्मी सभी देवास्त्रों से सज्जित विराट् शक्ति-रूपा हैं, जिनसे समस्त देवी-देवताओं की उत्पत्ति होती है और वीणावादिनी, सरस्वती, सहस्रकमलाक्षी लक्ष्मी तथा त्रिशूलधारी महाकाली अपने रूप धारण करती हैं । 'लक्ष्म' का अर्थ है लक्षण या गुण और विभिन्न गुणों से संयुक्त होकर लक्ष्मी सौभाग्य लक्ष्मी, गजलक्ष्मी, कमलासना लक्ष्मी, उलूकवाहिनी आदि नामरूपा हैं । मूलतः लक्ष्मी या पुण्यालक्ष्मी और अलक्ष्मी या पापलक्ष्मी उनके सकारात्मक और नकारात्मक रूप हैं। लक्ष्मी-तंत्र में लक्ष्मी स्वयं कहती हैं कि पहले वे शांतिस्वरूपा थीं, परन्तु सागर-मँथन से उनके भीतर विक्षोभ पैदा हुआ और धन-सम्पत्ति से जुड़े दोष उनमें आ गये । लोक द्वारा महालक्ष्मी और लक्ष्मी-दोनों का पूजन होता है । महालक्ष्मी का क्वार के कृष्ण-पक्ष की अष्टमी को और लक्ष्मी का कार्तिक की अमावस्या को । वास्तव में पुराणों ने ही हिन्दुओं और उनके लोकधर्म को नवीन चेतना दी और उन्हीं के माध्यम से यह सांस्कृतिक चेतना गाँव-खेरे और घर-घर तक पहुँची । मध्ययुग के स्फूर्ति-केन्द्र पुराण ही थे, जिनकी लोकधर्मी लोककथाओं ने एक नया लोकधर्म दिया । एक ऐसा सनातन-सा लोकधर्म, जो बाहरी सांस्कृतिक आक्रमण से भारतीयता की रक्षा कर सका ।

मध्ययुग में ग्वालियर के तोमर (१४००-१५१७ ई.) गढ़-मंडला के गौंड़ (१४००-१८०४ ई.) और ओरछा-पन्ना के बुंदेलों (१४००-१८००ई.) ने वैष्णव धर्म, संस्कृति और साहित्य का पोषण किया । भक्ति-आंदोलन से अनेक सम्प्रदायों का उदय हुआ, पर लोकधर्म ने एक निरपेक्ष समन्वयकारी मानवधर्म का स्वरूप विकसित किया, जिसके फलस्वरूप कुछ लोकदेवता गायब हो गये, कुछ बने रहे और कुछ अधिक प्रभावशाली होकर पूरे बुंदेली लोक में छा गये । लोकदेवता युग-चेतना के अनुकूल जन्म लेते हैं, नाना परिवर्तनों को झेलते विकास करते हैं और लोकतत्त्वों से हटने पर काल के गाल में समा जाते हैं । मध्ययुग में विष्णु, ब्रह्मा आदि उतने सशक्त नहीं रहे, जितने राम-कृष्ण । शंकर तो सनातनी लोकदेव हैं । गणेश लोकप्रिय हो गये, सूर्य बने रहे और हनुमान ने तो गजब ही कर दिया । अग्नि, वरुण और कुबेर जैसे, अपनी हस्ती न रख सके, पर हरदौल, मंगतदेव, अजैपाल, कारसदेव और नाना प्रकार के छोटे-मोटे देव पैदा हो गये । लक्ष्मी लोकजीवन के भौतिक पक्ष से ऐसे जुड़ती गईं कि मुस्लिम, मुगल, अंग्रेज आदि ही नहीं, वरन् जातिवाद, साम्प्रदायिकता, वर्गवैषम्य, समाजवाद आदि उन्हें अपने आसन से नहीं उतार सके । हर व्यक्ति, जाति, वर्ग और सम्प्रदाय लोकदेवी लक्ष्मी को किसी-न-किसी रूप में मानता है । आदिवासी भील की जस्मा माता से लेकर बैंक की आधुनिक एजेन्सी तक वे सर्वव्यापक हैं । उन्हें उच्चवर्ग प्रिय है, निम्न वर्ग भी और शोषक-शोषित तथाइ न सबसे निरपेक्ष भी । वे सभी मानों में लोकदेवी हैं ।

कुछ विद्वानों का विचार है कि बाहर से घर में आने वाली लक्ष्मी ही पूजी जाती हैं । पर यह सत्य नहीं है । लक्ष्मी का आवाहन तो व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की समृद्धि, सुख, शान्ति, कीर्ति आदि के लिये किया जाता है और उसके गवाह हैं वे छन्द, जिनमें 'मनसः कामनाकूति' अर्था मन की कामना और संकल्प से लेकर 'राष्ट्रेस्मिन कीर्तिमृद्धि' अर्थात् राष्ट्र में उत्पन्न होने वाले हर व्यक्ति की कीर्ति और ऋद्धि तक की व्यापक मांगलिकता है ।

लोकदेवी लक्ष्मी का पूजन शास्त्रीय या तांत्रिक विधान से मुक्त लोकभावना से संबद्ध है । हर जनपद में थोड़ी-बहुत भिन्नता से लक्ष्मी का आलेखन अंकित किया जाता है । कहीं लक्ष्मी के साथ गणेश लिखे जाते हैं और कहीं विष्णु या सरस्वती । बुंदेलखंड जनपद काफी बड़ा है, अतएव उसके विभिन्न क्षेत्रों में कुछ-न-कुछ विविधता है, फिर भी सुरातू का आलेखन सर्वत्र है । रात के मांगालिक काल में पहले चूने या खड़िया से पुती पूजा-घर की दीवार पर गेरू से सुरेता-सुरातू (विष्णु-लक्ष्मी) लिखा जाता है या केवल सुरातू (लक्ष्मी) । शब्दकोष में सुरेता का अर्थ है, अति पराक्रमी, पर यह शब्द सुर (देव) का सामासिक शब्द है । इस लोकचित्र में ज्यामितिक प्रतीकों द्वारा सार्थक और जीवंत रेखांकन किया गया है । ऊपर दोनों सिरों में सूरज-चन्दा प्रकाश और जीवन की शाश्वतता के, दोनों ओर के स्वस्तिक कल्याण के, उनके

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

बीच सुरेता-सुरातू के चित्रों में मुख का चतुर्भुज या वर्ग शुभ फलदायक देवमण्डल कार अथवा त्रिभुज शक्ति का तथा शरीर या देहयष्टि के घरा या खाने, समृद्धि-भण्डार के प्रतीक हैं । कुछ व्याख्याकारों ने इन घरों या खानों को बंदीगृह माना है, जिसमें बलि द्वारा लक्ष्मी कैद की गई है, परन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि लोक बंदीगृह में बन्द लक्ष्मी की पूजा नहीं करता । दूसरे, यदि उसे बंदीगृह ही मान लिया जाए, तो विष्णु किस बन्दीगृह में रखे जायें ।

सुरेता-सुरातू या केवल सुरातू की एक ओर डबुलियाँ और दूसरी ओर दिये अंकित होते हैं, जो धान्य और प्रकाश के द्योतक हैं । नीचे पारम्परिक चौकों के साथ गोवर्द्धन, चौपड़, तुलसी, कमल, श्रवणकुमार आदि में से कोई दो, कोई तीन और कोई अधिक अंकन कर देता है । वैसे गोवर्द्धन (गोधन) चौपड़ (खेल), तुलसी (लक्ष्मी की अवतार) एवं कमल (लक्ष्मी के आसन) दीवाली या लक्ष्मी से सम्बंधित हैं, इसलिए उनका रेखांकन पूरे चित्र को कई सन्दर्भों से जोड़कर एक संश्लिष्ट सम्पूर्णता प्रदान करता है । नाग-नागिन (मणिधारी) रत्नादि की सम्पन्नता के, श्रवणकुमार सेवा-भक्ति के और सप्तकोण सप्तर्षि के प्रतीक कभी-कभी इसमें सम्मिलित कर दिये जाते हैं । कहीं-कहीं चारों ओर चौखटा खींच दिया जाता है, जिसके बीच लहरिया (तरंगायित रेखाएं) जीवन-प्रवाह की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देती हैं और स्वस्तिक या गोला (वृत्त) कल्याण और सृष्टि के बीज-ब्रह्म की ।

लक्ष्मी-पूजन की साधारण प्रक्रिया सरल है । गोबर से लिपी भूमि पर आटा अथवा चावल के चूर्ण से कमल चौक पूरा जाता है, जो लक्ष्मी के कमलासन का द्योतक है । चौक के बीच में एक पट्टिका पर लक्ष्मी जू का पट या लोकमूर्ति आसीन कर उसके सामने और दोनों तरफ स्वर्णरजत आभूषण, सिक्के, मंजिष्ठा या मजीठ की जड़, शमी की पत्ती और धना शुशोभित होते हैं । आभूषण और सिक्के धन के, मजीठ अनुराग का, शमी शांति एवं आत्मसंयम तथा धना धान्य के लोकप्रतीक हैं । पूजा के उपकरणों में हल्दी प्रेम, श्री सौंदर्य, अक्षत कल्याण दूब धैर्य, कमल अनुराग एवं विवेक, सिंदूर सौभाग्य, कमलगट्ठा फल, दीपक प्रकाश या ज्ञान, नारियल बलि या त्याग तथा खील-बताशा-लड्डू-मिष्टान्नादि भोग के प्रतिनिधि हैं । आशय यह है कि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र इतने गुणों से भूषित होकर ही लक्ष्मी का आवाहन करें, तब लक्ष्मी प्रसन्न होकर उसे समृद्धि और सुख-शांति का वरदान देती है । लोकचित्र के पूजन में स्त्रियाँ लक्ष्मी के सिर में गुड़ से सोने या चाँदी का सिक्का चिपका देती हैं । फिर चित्र और पट या मूर्ति का पूजन हल्दी, दूब, अक्षत, श्री आदि से करने के बाद घी के दियों (आटे के दीपकों में घी और फूलबत्ती डालकर) से आरती की जाती है । मंगल कलश का दिया रात भर प्रकाशित रहता है, क्योंकि लोकविश्वास है कि लक्ष्मी अंधेरे में नहीं आतीं । घर की भित्तियाँ और द्वार सिंदूर और गेरू से आलेखित रहते हैं और दीपों से प्रकाशित । कहीं ओऽम् कहीं स्वस्तिक और कहीं देव-देवी । ऐसा लगता है कि पूरा परिवार लक्ष्मी जू के प्रति पूरी तरह सचेत है ।

हर जनपद में लक्ष्मी जू से संबंधित लोककथायों हैं । साथ ही एक लोककथा थोड़े-बहुत रूपांतरण से पूरे देश में प्रचलित है । बुंदेली में उसके कथानक के दो सूत्र हैं-(१) हर चीज उपयोगी होती है, जिसका उपदेश बुढ़िया माँ अपने पुत्र से देती है और वह उसका पालन करता हुआ एक मरा हुआ साँप लाता है । (२) लक्ष्मी प्रकाश में ही आती है, अंधकार में नहीं । इसी कारण चील जब छप्पर पर पड़े मरे साँप को उठाकर रानी का नौलखा हार छोड़ जाती है, तब बुढ़िया राजा को हार देकर यही माँगती है कि अमावस की रात पूरी नगरी के दीपक उसी के घर प्रज्ज्वालित हों । फलस्वरूप लक्ष्मी सब जगह अंधेरा पाकर उसी बुढ़िया के घर आती हैं, लेकिन बुढ़िया उन्हें तभी प्रवेश देती है, जब लक्ष्मी उसे सात पैरी (पीढ़ियों) तक समृद्धि और सुख देने का वचन देती हैं । सभी जनपदों में लगभग यही रूप प्रचलित है । बुंदेली लोक में दो लोकोक्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं । पहली हैं-'घर आई लक्ष्मी न टारौ', जिसका अर्थ है कि घर में आती लक्ष्मी या गृहलक्ष्मी की अवहेलना करना उचित नहीं है । दूसरी है-'लक्ष्मी हती, दौनऊँ हाँतन लड्डू लैकें गई', जिसका तात्पर्य है कि पति के रहते नारी के मरने पर उसे लक्ष्मी कहा जाता है । इस प्रकार नारी को ही समृद्धि और सौभाग्य की प्रतीक लक्ष्मी माना जाता है, जो आधुनिक परिस्थितियों में भी उपयोगी लोकमूल्य बन सकता है ।

महालक्ष्मी की भी अपनी कथा है, जिसे सोलह बार कहने का विधान है । लेकिन लोक को इतनी फुर्सत कहाँ कि वह किसी भी विधि से बँधे, अतएव वह 'आमोती-दामोती रानी/ पोला-परपाटा, गाँव-नगर मगरसेन राजा बम्हन बरुआ

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

कहे कहानी/तुम सुनौ हे महालक्ष्मी देवी रानी/हमसें कातीं तुमसें सुनतीं सोला बोल की एक कहानी' । कहकर स्पष्ट करता है कि कोई भी गाँव या नगर और कोई भी राजा हो या रानी, उसे तो सोलह बोल से मतलब है । असल में लोक राजा-रानी की परवाह नहीं करता, वरन् वह लोकदेवी लक्ष्मी को ही अपनी श्रद्धा अर्पित करता है । साथ ही उसकी मौल घोषणा है कि वह महान् देवी या देवता से नहीं जुड़ना चाहता, वह तो उसी लोकदेवी या देवता से मतलब रखता है, जो उसके जीवन से मतलब रखें ।

अंत में, वह कहना भी जरूरी है, जो लक्ष्मी अनकहे कहती हैं । आज की अमावस ज्यादा काली हो गई है । बेईमानी, अनीति, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, चोरी, डाकाजनी, विदेशी वस्तुएँ धारण करने का अभिमान, अंग्रेजी बोलने का गौरव, डिस्को कला-प्रेम, परिवार-समाज-देश के टुकड़े-टुकड़े करने वाली तंग मानसिकता आदि तमाम अंधेरे परत-दर-परत जमकर बैठ गये हैं । इसलिए आज सबसे ज्यादा जरूरत है उस लोकदेवी लक्ष्मी की, जो सारे अंधेरों को फाड़कर सही ज्ञान का प्रकाश-पुंज आलोकित करती है । शर्त यह है कि हम व्यक्तिपरक स्वार्थों को छोड़कर एक साथ प्रार्थना करें-

एक दिया मोरे अँगना खाँ दै देव, दूदन भरो नहाय ।

एक दिया मोरे देसा खाँ दै देव, जगर मगर हो जाय ।।

लक्ष्मी लोककथाओं की देवी है, लोकगीतों की नहीं, इसलिए लोककवि कहता है-

एक दिया मोरी बैना खाँ दे देव, किसा कहै लै जाय ।

एक दिया मोरी ननदी खाँ दे देव, घर-घर जोत जराय ।

संदर्भ संकेत

१. भारतीय कला डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, १९६६ पृ. ३१

२. कादम्बरी (एक सांस्कृतिक अध्ययन), वासुदेवशरण अग्रवाल, सं. २०१४, पृ. ४२, २२३

३. अंधकारयुगीन भारत, अनु. रामचन्द्र वर्मा, संवत् १९९५, पृ. १३३

४. कादम्बरी, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. ११७-१२१

५. हर्षवर्द्धन, गौरीशंकर चटर्जी, १९५०, पृष्ठ ३३७

६. कार्पस इन्स्क्रिपशनम् इंडिकेरम, वॉल्यूम ४, पृ. ३७१

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

७. रूपकषटकम् वत्सराज, पृ. १४९, १५४

८. दि अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, शिशिर कुमार मित्र, १९७७, पृ. २३७ क्रम ५९

९. पद्मपुराण, उत्तर खंड, १२२ एवं स्कंद पुराण, कार्तिक मास माहात्म्यम् ९-११.

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/